Research Chronicler: International Multidisciplinary Refereed Peer Reviewed Indexed Research Journal
ISSN: Print: 2347-5021 www.research-chronicler.com ISSN: Online: 2347-503X

1935 के अधिनियम में देशी रियासतों की स्थिति का विश्लेषणःएक अध्ययन

प्रेमलता

शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, (बिहार) भारत

सार–संक्षेप

गवर्नर वाले प्रांतों और संघ में शामिल होने वाली भारतीय रियासतों तथा आयुक्त के प्रांतों को मिलाकर भारत का संघ बनना था। एक विशेष शर्त के पूरे होने पर पार्लियामेंट के प्रत्येक सदन द्वारा निवेदनपत्र प्रस्तुत करने के बाद महामहिम (ब्रिटिश राजा) द्वारा जारी हुई उद्घोषणा के माध्यम से संघ अस्तित्व में आएगा। शर्त यह भी कि संघ में शामिल होने वाले राजा–नवाब राज्य परिषद् के कम से कम 52 सदस्यों को चुनकर भेजने के हकदार होंगे और उनकी रियासतों की कुल जनसंख्या के कम से कम आधे भाग के बराबर होगी। इस शर्त के पूरे हो जाने से ही अपने आप संघ की स्थापना नहीं हो पाएगी। जैसा कि संयुक्त संसदीय समिति ने कहा–पार्लियामेंट को न केवल इसके बारे में संतुष्ठ होने का अधिकार है कि रियासतों की निर्धारित संख्या ने वास्तव में संघ में शामिल होने की इच्छा व्यक्त कर दी है बल्कि ठोस तथा स्थिर आधार पर संघ की सफल स्थापना के लिए आवश्यक राजनीतिक शर्ते भी पूरी हो गई है।

मुख्य शब्द–रियासत, रजवाड़ा, विधानमंडल, कार्यान्वयन, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, क्रांतिकारी

सन् 1935 के अधिनियम में संघीय संविधान का प्रावधान किया गया था। गवर्नर वाले प्रांतों और संघ में शामिल होने वाली भारतीय रियासतों तथा आयुक्त के प्रांतों को मिलाकर भारत का संघ बनना था। एक विशेष शर्त के पूरे होने पर पार्लियामेंट के प्रत्येक सदन द्वारा निवेदनपत्र प्रस्तुत करने के बाद महामहिम (ब्रिटिश राजा) द्वारा जारी हुई उद्घोषणा के माध्यम से संघ अस्तित्व में आएगा। शर्त यह भी कि संघ में शामिल होने वाले राजा–नवाब राज्य परिषद् के कम से कम 52 सदस्यों को चुनकर भेजने के हकदार होंगे और उनकी रियासतों की कुल जनसंख्या के कम से कम आधे भाग के बराबर होगी। इस शर्त के पूरे हो जाने से ही अपने आप संघ की स्थापना नहीं हो पाएगी। जैसा कि संयुक्त संसदीय समिति ने कहा–पार्लियामेंट को न केवल इसके बारे में संतुष्ठ होने का अधिकार है कि रियासतों की निर्धारित संख्या ने वास्तव में संघ में शामिल होने की इच्छा व्यक्त कर दी है बल्कि ठोस तथा स्थिर आधार पर संघ की सफल स्थापना के लिए आवश्यक राजनीतिक शर्ते भी पूरी हो गई है। इस बात पर पार्लियामेंट का संतोष (ब्रिटिश

राजा को निवेदनपत्र में) औपचारिक रूप से प्रकट किया जाना था।

कितने रियासत संघ में शामिल हुई तब मानी जाएगी जब महामहिम उसके शासक द्वारा अनुबंधित अधिमिलन लेखपत्र को स्वीकार कर लेंगे। ऐसे लेखपत्र द्वारा शासक स्वयं को अपने वारिसान और उत्तराधिकारियों को अपनी रियासत के संबंध में ऐसे कार्यों के प्रयोग को केवल संघ के उद्देश्यों के लिए स्वीकार करने के लिए बाध्य करेगा जिन्हें अधिनियम के अन्तर्गत या द्वारा राजा, गवर्नर जनरल और अन्य किसी संघीय प्राधिकरण में निहित किया जाएगा। वह यह सुनिश्चित करने का दायित्व भी ग्रहण करेगा कि इस अधिनियम के प्रावधानों को उसकी रियासत में वहाँ तक समुचित ढंग से कार्यान्वित किया जाता है जहाँ तक उसके अधिमिलन लेखपत्र के अनुसार उन्हें उसमें लागू होना है। अधिमिलन लेखपत्र में वे विषय विनिर्दिष्ट होंगे जिन्हें शासक संघीय विधानमंडल द्वारा उसकी रियासत के लिए कानून बनाने हेतु विषयों के रूप में स्वीकार करता है और साथ ही वे सीमाएं भी (यदि हो) विनिर्दिष्ट होगी जिनके अधीन रियासत के लिए कानून बनाने का संघीय विधानमंडल का अधिकार तथा उसकी रियासत में संघ के अधिशासी प्राधिकार का प्रयोग हो। राजा या किसी संघीय प्राधिकरण द्वारा प्रयुक्त कार्यों का विस्तार शासक द्वारा अनुबंधित तथा महामहिम द्वारा स्वीकृत पूरक लेखपत्र से किया जा सकेगा। महामहिम द्वारा किसी अधिमिलन लेखपत्र या पूरक लेखपत्र का स्वीकार होना तब तक अपेक्षित नहीं होगा जब तक वह ऐसा करना समुचित न समझे। संयुक्त समिति का कथन था कि वह लेखपत्र स्वीकार्य नहीं होगा जिसमें शासक द्वारा वांछित अपवाद या आरक्षण ऐसे हैं जिनसे अधिमिलन भ्रामक या दिखावा सा हो जाएगा।

वर्तमान शोध–पत्र के 1935 के अधिनियम में देशी रियासतों की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। ब्रिटिश शासन के दौरान जमींदारी व्यवस्था, देशी रियासत तथा पूंजीवादी आर्थिक संरचना के कारण साम्राज्यवादी शक्तियों को बल प्राप्त हो रहा था।[1] अतः स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विभिन्न रूपों में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ संघर्ष के लिए देशी रियासत, जमींदारी व्यवस्था तथा पूंजीवादी आर्थिक संरचना पर आक्रमण होता रहा।

भूमि कर की बात है जहाँ नकद भुगतान किया जाता है यह कर प्रति एकड़ 4 शिलिंग है लेकिन जहाँ नगद कर नहीं दिया जाता वहाँ यह दर बढ़ जाती है। रियासत के हिस्से में 40 प्रतिशत भाग आ जाता है। यदि बहुत संतुलित अनुमान लगाएं तो अन्य कर लगभग 10 प्रतिशत हैं।

इसके अलावा उसे गाँव के मुखिया या मुखिया के परिवार के सदस्यों की शादी का खर्च भी वहन करना पड़ता है और मुखिया के यहाँ यदि कोई लड़का पैदा हुआ तो पुत्रजन्म समारोह पर तथा मुखिया की पत्नी या माँ के मरने पर अंतिम संस्कार के समय उसे इन समारोहों का खर्च बरदाश्त करना होता है।[2]

भारतीय रजवाड़ों की यह शासन व्यवस्था जितनी दमनकारी और अन्यायपूर्ण थी उसकी दुनिया में कोई मिसाल नहीं। इसकी खास वजह यह है कि इसमें अत्यंत आदिम, सामंती दमन सम्मिलित है, यहाँ नीचे के स्तर पर प्रत्यक्ष गुलामी की अवशेष है और ऊपर सर्वोच्च साम्राज्यवादी शक्ति और शोषण है।[3]

''यदि भारतीय राजाओं का कोई अखिल भारतीय महासंघ बनता है तो उसका हमेशा ही एक स्थाई प्रभाव होगा। इसमें हमारे लिए सबसे ज्यादा डरने वाली बात क्या है? कुछ राजा ऐसे हैं जो भारत की आजादी के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी तरह अलग होने के लिए आंदोलन करते हैं। मेरा अपना ख्याल है कि इस तरह की मांग करने वाले राजाओं का अल्पमत है। यह बहुत सुस्पष्ट अल्पमत है और इनके पीछे कांगेस का संगठन है। इसलिए हमारे लिए यह महत्वपूर्ण है कि इस विचारधारा के विरूद्ध हम जो भी स्थाई प्रभाव पैदा कर सकते हैं, करें।..... ''तकरीबन 33 प्रतिशत राजा विधानसभा के सदस्य होंगे और ऊपरी सदन में इनका प्रतिनिधित्व 40 प्रतिशत होगा।[4] बेशक ऐसे भारतीयों की काफी संख्या है जो कांग्रेस की विचारधारा को नहीं मानते हैं।[5] इस प्रकार यदि कांग्रेस ने काफी अधिक वोट पाने की व्यवस्था कर भी ली तो भी मुझे इस बात का तनिक भी भय नहीं है कि कुछ ऐसा ही हो सकेगा जो हमारे लिए प्रतिकूल हो।

रियासतों में जन आंदोलन की इस प्रगति के साथ–साथ राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति में भी परिवर्तन की झलक मिली है।[6] अतीत में राष्ट्रीय कांग्रेस ने सीधे तौर पर भारतीय रियासतों में आंदोलन की इस तरह की गतिविधियों में भाग लेने से अपने को अलग रखा। 'हस्तक्षेप न करने' की नीति को जानबूझकर अपनाया गया और उसके साथ ही यह झूठी आशा की गई कि इन कठपुतली रियासतों के राजाओं के साथ किसी तरह की एकता कायम हो जाएगी।[7] कांग्रेस ने कभी यह नहीं सोचा कि इन रियासतों की 8 करोड़ दलित जनता के साथ किसी तरह की एकता कायम की जाए। गोलमेज सम्मेलन में गांधी ने कहा था कि 'अब तक कांग्रेस ने राजाओं की इस तरह सेवा करने की कोशिश की है कि वह उनके घरेलू तथा आंतरिक मामलों में किसी तरह की दखलअंदाजी नहीं करती।' गांधी ने आगे कहा–

'मैं महसूस करता हूँ और यह जानता हूँ कि इन राजाओं के दिलों में अपनी प्रजा के हित की बातें हैं। उनके और मेरे बीच कोई फर्क नहीं है सिवाय इसके कि हम लोग एक साधारण व्यक्ति हैं और उन्हें ईश्वर ने भद्र राजकुमार बनाया है। मैं उनके लिए शुभकामना व्यक्त करता हूँ, मैं उनकी समृद्धि की कामना करता हूँ।'' इस नीति के अनुसार राष्ट्रीय नेताओं ने रियासतों की जनता के आंदोलनों में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। फरवरी 1939 में ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस का लुधियाना अधिवेशन हुआ और जवाहरलाल नेहरू इसके अध्यक्ष तथा पट्टाभिसीतारमैया उपाध्यक्ष चुने गए।

सम्मेलन में 'उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार' की स्थापना के संघर्ष में रियासतों की जनता के आंदोलन की प्रगति का स्वागत किया और कहा।[8]

अब समय आ गया है जब इस संघर्ष को भारतीय स्वतंत्रता के उस अधिक व्यापक संघर्ष के साथ मिलाकर चलाया जाए जिसका वह एक अभिन्न अंग है।[9] अखिल भारतीय स्तर पर चलाया जाने वाला इस प्रकार का संयुक्त संघर्ष अनिवार्य रूप से कांग्रेस के नेतृत्व में ही चलाया जाना चाहिए।

अन्य रियासतें, जिनकी संख्या 15 से 20 हो सकती है और जो संघ की स्वायत्तशासित इकाइयों के रूप में रह सकती हैं उनके शासक एक जनतांत्रिक सरकार के अन्तर्गत सांविधानिक अध्यक्ष बने रह सकते हैं। इनमें से कुछ शासक और राजा महाराजा अत्यंत प्राचीन रजवाड़ों के हैं जिनका इतिहास और परम्परा से घनिष्ठ संबंध है। सूबों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों को फिर से गठित होने तथा उभरते क्रांतिकारी विद्रोहों के कारण सांविधानिक बहसों के शुरू होने के भारतीय रियासतें भारत की राजनीतिक स्थिति का केन्द्र बिन्दु हो गई है। रियासतों में सामंती निरंकुशता के विरूद्ध स्वतः स्फूर्त संघर्ष प्रारंभ हो गए और उनका बहुत ही हिंसात्मक तरीके से राजाओं ने दमन किया है।[10] राजाओं के इस काम में ब्रिटेन के राजनीतिक विभाग का समर्थन प्राप्त है। इन संघर्षों का सबसे जबरदस्त उभार 1946 में कश्मीर में देखा गया जब जनता के डोगरा राजवंश के खिलाफ बहुत स्पष्ट और खुले शब्दों में 'कश्मीर छोड़ो' नारा दिया।[11]

यहाँ यह देखा जा सकता है कि कांग्रेस की वर्तमान नीति आज भी रियासतों के पहले से बने बनाए ढांचों के अन्दर तथा राजाओं के चले आ रहे शासन के अन्तर्गत ही सुधारों की बात करती है। इस तरह की स्थिति महज एक अधूरी स्थिति हो सकती है, यह राष्ट्रीय आंदोलन को बुनियादी मसले तक पहुँचाने की दशा में एक अवस्था हो सकती है। जिस किसी भी व्यक्ति को भारतीय समस्या की अच्छी जानकारी है वह इस बात से इंकार करने को तैयार नहीं होगा कि ब्रिटिश अफसरशाही आमतौर पर मुसलमानों का पक्ष लेती है। कुछ हद तक तो यह पक्षपात सहानुभूति के कारण होता है ज्यादातर इसका उद्देश्य हिन्दू राष्ट्रवादिता के खिलाफ मुसलमानों को इस्तेमाल करने के लिए किया जाता है। (10 जुलाई 1926 के दि टाइम्स में लार्ड ओलीवियर का पत्र)[12]

1890 में ही सर सैयद अहमद खाँ ने, जिनका सरकार के साथ घनिष्ठ संबंध था, मुसलमानों के एक जुट का नेतृत्व किया और उन्होंने मुसलमानों के लिए विशेष अधिकारों और पदों की मांग की। लेकिन जिम्मेदार जनमत ने इस मांग का विरोध किया। 'मुस्लिम हैराल्ड' नामक पत्र ने इस मांग की निंदा करते हुए कहा कि यह माँग गाँवों और जिलों के सामाजिक जीवन में जहर घोल देगी और भारत को नरक बना देगी। उस समय इस सिलसिले में कुछ और सुनने को नहीं मिला।

सन्दर्भ सूची

1. संयुक्त समिति रिपोर्ट, पारा 148
2. वही, पारा 148
3. वही, पारा 149
4. वही, पृ०–135
5. वही, पृ०–137
6. वही, पृ०–626
7. वही, पृ०–627
8. सीतारमैया–पूर्वोद्धृत, पृ०–304
9. वही, पृ०–304
10. वही, पृ०–305
11. वही, पृ०–118
12. वही, पृ०–118